

## स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में व्यंग्य की प्रधानता का प्रमुख कारण

डॉ० महेश चन्द्र चौधरी

एसोसिएट प्रोफेसर

हिन्दी विभाग

नारायण कॉलेज, शिकोहाबाद

### सारांश

आज का प्राणी प्राचीन अंधविश्वास, रूढ़वादिता, मिथ्या-आडम्बर इन सभी से छुटकारा पाना चाहता है और आधुनिक विचारों से युक्त उन्मुक्त जीवन जीना चाहता है, परन्तु प्राचीन संस्कारों की जड़ें अभी भी इतनी गहरी हैं कि चाहते हुए भी वह उन्हें पूर्णतः त्याग नहीं पाता। इस प्रकार उसका जीवन नवीन और प्राचीन के संघर्ष में उलझ कर रह गया है। चाहते हुए भी वह प्राचीन का पूर्णतः परित्याग और नवीन को अंगीकार नहीं कर पाता। नवीन के मार्ग में कभी-कभी किसी परिस्थिति-वश ही सही, प्राचीनता आ ही जाती है। यह सब इसकी अधकचरी मानसिकता के कारण है। दो नावों में पैर रखकर कभी गन्तव्य तक नहीं पहुँचा जा सकता। ठीक उसी प्रकार परस्पर दो विरोधी और विपरीत विचाराधारों को आधा-आधा स्वीकार कर जीवन में लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता।

### परिचय

किसी समय भारतवासियों का मूलमन्त्र था – 'सादा जीवन उच्च विचार' परन्तु आज जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण पूर्णतः परिवर्तित हो गया है। प्राचीन समय में जीवन के प्रति जो गम्भीरता दिखायी देती थी, वह भी पूर्णतः समाप्त हो गयी है। आज का व्यक्ति वास्तविकता और सच्चाई के स्थान पर अनेकानेक मिथ्या और कोरे आडम्बरों से युक्त होकर जीवन जीने में अपनी शान समझता है। आज के व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन दिखावे मात्र का रह गया है।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् देश की तेजी से बदलती हुई राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक जीवन की स्थितियों, परिस्थितियों तथा उनसे जन्म लेने वाली अनेकानेक विसंगतियों ने साहित्यकारों की चेतना को अन्दर से झकझोरा और उनके मस्तिष्क में एक प्रकार के आक्रोश को जन्म दिया। विसंगतियों की प्रतिक्रिया स्वरूप जन्में इसी आक्रोश ने हिन्दी-साहित्य की प्रत्येक विधा को व्यक्तिमय बनाने के लिए विवश कर दिया। अन्दर से चोट खाया हुआ व्यक्ति जब भी बोलेगा, व्यंग्य ही बोलेगा। उसकी लेखनी, जब भी लिखेगी व्यंग्य ही लिखेगी। यही कारण है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हिन्दी साहित्य की प्रत्येक दिशाओं में व्यंग्य की प्रधानता देखने को मिलती है।

आजादी के बाद परिस्थितियों की विषमता ने उन सभी आदर्शों, जीवन-मूल्यों और मान्यताओं को बुरी तरह झिझोड़ दिया, जो भारतीय जन-जीवन के साथ सदियों से चिपके हुए थे। साम्प्रदायिक दंगों, बलात्कार और आगजनी की घटनाओं और हत्याओं से आतंकित नई पीढ़ी के सामने एक बार तो सभी दिशाएँ बन्द हो गयीं। स्वतन्त्रता के उपरान्त राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक मोर्चों पर होने वाली पराजयों ने भी कम हताश नहीं किया। संशय और अनिश्चय में झूलते परिवेश ने सजग साहित्यकारों- विशेषतः युवा साहित्यकारों को एक सर्वथा नवीन भाव-बोध प्रदान किया।<sup>1</sup>

यही नवीन भाव-बोध स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में व्यंग्य की प्रधानता का प्रमुख कारण है। समाज और व्यक्ति, आदर्श और यथार्थ, व्यक्ति स्वातन्त्र्य, जन-हित के बीच गहरा द्वन्द्व छिड़ गया है और मनुष्य इस संघर्ष से छुटकारा पाने के लिए जिन सीधी राहों की खोज कर रहा है, वेराहें उसके पाप की जंजीर बनती जा रही है। तबवह बाहर न देखकर भीतर देखता है। वह खोखले आदमी के भीतर झाँकता है, क्योंकि वह महसूस करता है कि उसके खोखलेपन को स्वीकार किये बिना मुक्ति नहीं है। यह बोध उसे व्यंग्यशील बना देता है। इस कारण ने साहित्य की प्रत्येक विधा को व्यंग्यमय बनने के लिए विवश कर दिया है।<sup>2</sup>

आचार-विचार और रहन-सहन सभ्यता और संस्कृति की व्यापक परिधि में समाहित होते हैं। प्रत्येक संस्कृति के आचार-विचार और रहन-सहन के नियम अपने होते हैं, जो दूसरी संस्कृति से पृथक अस्तित्व रखते हैं। भारतीय समाज में विदेशीपन की अनुकरण की विकृत स्थिति, पाश्चात्य प्रभाव आदि पर शरद जोशी ने यथार्थ रूप से प्रकाश डाला है। आज की नयी पीढ़ी की असन्तुष्टि का प्रभाव उसके रहन-सहन से अभिव्यक्त होता है।

स्वतन्त्रता से पूर्व भारतवासियों के जीवन के कुछ सिद्धान्त थे, आदर्श थे। मान-मर्यादा और कर्तव्य भावना थी, उनके अन्दर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' विश्वबन्धुत्व, सर्वभन्तु सुखिनः और परदुःख-कातरता जैसे महान् और उच्च भाव विद्यमान थे, परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् से तो यह सभी पूर्णतः नष्ट होते चले गये। व्यक्ति अधिक से अधिक स्वार्थी और आत्मनिष्ठ होता चला गया। उसके जीवन जीने, सोचने-विचारने के तौर तरीके पूर्णतः परिवर्तित हो गये। इन परिवर्तित जीवन-मूल्यों और उनके परिणामस्वरूप बिगड़ती स्थितियों के साथ विकृत होती संस्कृति को लक्ष्य कर अनेकशः व्यंग्य किया है। आज की विकृत संस्कृति के परिवेश का यथार्थ-चित्रण अपने वृत्तान्त 'मुद्रिका रहस्य' में किया है। भारतीय संस्कृति और परिवर्तित जीवन मूल्यों में घुटन की जिन्दगी जीने वाली युवा पीढ़ी के बीच संघर्ष निरन्तर बढ़ रहा है। विडम्बना यह है कि प्राचीन संस्कृति इन्हें असह्य है और नयी पीढ़ी ये बना नहीं पा रहे हैं। युवा पीढ़ी एक

विचित्र सी कशमकश के दौर से गुजर रही है। आज की युवा पीढ़ी का सूखा-सूखा- चेहरा, बड़ी हुई दाढ़ी, बाल, चायघर या काफी हाउसों में अड़डेबाजी करने वाला तथाकथित बौद्धिक वर्ग संतुष्ट है, कुण्ठाग्रस्त है। घुटते दम को बचाने के लिए उसने तरह-तरह के नशे करना शुरू कर दिया है जिससे उनकी घुटन और भी अधिक बढ़ गयी है।

आप दूसरी तरह से यह सोचिए कि नयी पीढ़ी क्यों असन्तुष्ट है? वह क्यों गैर-जिम्मेदार है? कारण यह है कि उनमें क्षमता है, साहस नहीं है। "क्षमता है और विश्वास है कि राज्य के मुख्यमंत्री बनकर काम कर सकेंगे, पर उसे प्राप्त करने की जो ताकत होती है, जो अन्दर से आती है या कुछ समाज से मिलती है वह नहीं है। ऐसी परिस्थिति में उस व्यक्तित्व में खीझ प्रकट होती है और भीड़ में घूमते समय अपना अस्तित्व प्रकट करने के लिए कुछ नयी चीजें सामने लाता है, जैसे बाल बढ़ाना, जूते की नोक लम्बी करना, रंगीन कपड़े पहनना और अपना अस्तित्व प्रकट करना कि मुझे देखो, मैं हूँ।"<sup>3</sup>

आज के युवक को अपने देश एवं परिवार से प्रेम नहीं रहा वे आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होने एवं विदेशी चकाचौंध से आकर्षित होकर अपने देश से पलायन कर जाते हैं। माता-पिता अपने प्रेम की दुहाई देते रह जाते हैं। विदेशी-यात्रा के लिए आतुर और आतुर ही नहीं पागलपन की हद तक दीवाने, भारतीय नागरिकों की स्थिति का चित्रण करते हुए लिखते हैं - "भारतीय मानुस उस दिव्य-क्षण के लिए क्या नहीं करने को तैयार है। तुम मुझे विदेश दो, मैं तुम्हें देश दूँगा। एक यात्रा के लिए वह अपनी भूमि, अपना घर बेच देगा, स्वर्ग को पाने का आतुर अभिलाशी जैसे धरती के माया-मोह, सुख-दुख से ऊपर उठ जाता है, उसी भाँति विदेश-यात्राकांक्षी भारतीय अपने देश के लिए तटस्थता अपना लेगा। अपने विदेश को सुदृढ़ करने के लिए वे देश को निश्चित ही बेच देना पसंद करते हैं।"<sup>4</sup>

आधुनिकता के नाम पर तथ्यहीन, कथ्यहीन एवं आधारहीन ग्रंथों की बाढ़ भी व्यंग्यकारों की आलोचना का विशय बनी है। पुस्तक के बाह्य कलेवर के आकर्षण व रूप सज्जा तथा मनभावन शीर्षक के द्वारा पाठकों को छलने की वृत्ति पर प्रहार करते हुए लिखते हैं - "हिन्दी में ऐसी खतरनाक पुस्तकों की कमी नहीं जिसके विशय में यह मशहूर है कि उन्हें एक बार आरम्भ करने पर बिना समाप्त किये आप छोड़ नहीं सकते। हिन्दी-पाठक, जो चुनौतियों का मुकाबला करना जानता है, ऐसी पुस्तकें अवश्य खरीदता है और उन्हें अधूरी फेंक स्वयं को विजयी महसूस करता है।"<sup>5</sup>

वास्तव में आज की भारतीय संस्कृति विकृतियों एवं विसंगतियों से युक्त है। प्राचीन और नवीन सांस्कृतिक स्थितियाँ एक विचित्र-सी कशमकश की स्थिति पैदा करती हैं। न तो पुराने आचार-विचार संस्कार, अंधविश्वास आदि हट पा रहे हैं, न ही नवीन का पूरी तरह निर्माण ही हो पा रहा है।

राष्ट्र की जीवंतता का बोध उसकी संस्कृति से ही प्राप्त होता है। भारतीय नागरिक अपनी संस्कृति की प्राचीनता और गौरव-गरिमा के दर्प से मंडित रहे, किन्तु आचरण में अपनी संस्कृति का गौरव-गान इन दो बिन्दुओं के मध्य झूलते हुए व्यक्ति को, व्यंग्यकारों ने अपने दृष्टिपथ में रखा है। दूसरों की वस्तु के प्रति आकर्षण, आत्महीनता की मानसिकता आदि को भी लक्ष्य किया है। पूरब-पूरब से बोर हुआ पड़ा है, पश्चिम-पश्चिम से, तो साहब पश्चिम के लिए पूरब एक दिल चस्प चीज है, पूरब के लिए पश्चिम।

आधुनिक चित्रकला के बड़े चर्चे हैं। महानगरों में आर्ट गैलरियाँ सजाई जाती हैं। चित्रकला से अनभिज्ञ व्यक्ति तिकड़मबाजी के सहारे कागज में कूची पटकाकार बड़े कलाकार बन जाते हैं। पैसा देकर आर्ट गैलरियों में अपनी पेंटिंग सजा लेते हैं। ऐसे चित्रकारों को हिन्दी व्यंग्य में आड़े हाथों लिया गया है। आज का चित्रकार पिकासों से टक्कर लेने की बात करता है और विलायत में अपने झंडे गाड़ना चाहता है।

धर्म और संस्कृति हमारे राष्ट्र की अमूल्य धरोहर है, जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को निरंतर हस्तान्तरित होती रहती है। प्रेम, दया, साहचर्य, मित्रता, परोपकार, दान, विवाह, मान-सम्मान, आदर्श शिष्टाचार, सत्य, अहिंसा, जप, तप और भलाई आदि हमारी धार्मिक और सांस्कृतिक परंपराएँ हैं, जो मानव को मानव से जोड़ती हैं और धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों का विकास करती हैं। परिवार में आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों में भी धर्म और संस्कृति का प्रभाव व्याप्त रहता है, क्योंकि यह मानव और मानव के बीच सम्बन्धों को मजबूत बनाती हैं।

सांस्कृतिक मामलों में सौहार्द बहुत जरूरी है। अपनों का एक नन्हा-सा, घनिष्ठ, परस्पर लाभान्वित करने और महिमा गाने वाला संसार होता है। सब एक-दूसरे की जेब, कुर्सी और यश का ख्याल रखते हुए कला को आगे बढ़ाते और खुद काफी आगे बढ़ते जाते हैं। "मैं तुझे गुणवंत कहूँ, तू मुझे कलावंत कह! और जब आप आसन जमा कर आलाप लेने लगते हैं, तो तबले, तानपूरे वाले तो आपकी लय और समर्थन के आसपास जुड़ ही जाते हैं। कलाओं की उस सराय में ऐसे सभी रहते हैं।"<sup>5</sup>

साहित्य एवं समाज की भाँति साहित्य तथा संस्कृति का सम्बन्ध सनातन, अटूट एवं सुश्रुतलित है। साहित्य के निर्माण में युगीन संस्कृति मूलभूत पदार्थ का स्थान ग्रहण करती है एवं संस्कृति के निर्माण में साहित्य प्रेरक, संचालक एवं संरक्षक की भूमिका सम्पन्न करता है। जिस प्रकार किसी वस्तु के निर्माण हेतु कच्चे पदार्थ की आवश्यकता होती है, ठीक उसी प्रकार साहित्य के निर्माण में साहित्यकार को युगीन संस्कृति से मूलभूत आधार सामग्री प्राप्त करने की आवश्यकता होती है। साहित्यकार समाज की विशिष्ट आशाओं, आकांक्षाओं, आवश्यकताओं, जीवन-पद्धतियों एवं कार्यप्रणालियों, मूल्यों, विचारों, भावों, आदतों आदि को अपनी सारग्राही एवं पैनी दृष्टि से ग्रहण कर सार्थक एवं आकर्षक शब्द विधान से कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करता है। इस प्रक्रिया के मध्य साहित्यकार का जीवन-दर्शन युगीन पाठकों एवं रसिकों के भाव-जगत् को प्रभावित करता हुआ एक ओर संस्कृति के विकास में योगदान प्रदान करता है, तो दूसरी ओर उसे लिपिबद्ध करता हुआ समकालीन संस्कृति को अक्षुण्ण भी बना देता है। इस प्रकार साहित्य संस्कृति का संरक्षक है और संस्कृति साहित्य की नियामक शक्ति बन जाती है। सांस्कृतिक मोर्चा पर स्थिति यह है कि देश में सभी भाषाओं का विकास हुआ। पहले चौदह थीं, अब सत्रह-अठारह लगने लगी हैं। हिन्दी चूंकि देश की सबसे बड़ी भाषा है, इसलिये हर

राष्ट्रीय नेता उसे चरणों के करीब रखता है। फिर भी वह गरीब है। जो साहित्यकार हैं वे लिखते नहीं। जो लिखते नहीं वे पुरस्कृत हो जाते हैं। जो हो गये वे और होना चाहते हैं। जो पुरस्कृत हो गये वे लिखने लगे।

“गणतन्त्र के इस वर्ष में नर्तकियों की आर्थिक स्थिति सबसे अच्छी रही है। जो शास्त्रीय संगीत गाते थे वे गूज़ल गाने की सोच रहे हैं। जिनके सुर नहीं मिलते वे भजन कर रहे हैं। बहाना जो भी हो, भोजन कर रहे हैं।”<sup>6</sup>

भारतीय समाज में इस ‘कल्चर’ के नाम पर बहुत कुछ परिवर्तन आ रहा है। आज सब कुछ आदमी के न चाहते हुए भी बदल रहा है और देखो जो हिन्दुस्तानी कल तक यूरोप के खिलाफ थे, आज वे क्या यूरोप के रहन-सहन को नहीं अपना रहे हैं। वस्तुतः यह सब क्या है ? एक प्रवाह है, प्रवाह, जिसमें सभी बह रहे हैं।

वास्तव में संस्कृति का लक्ष्य परम्परागत मूल्यों का सम्प्रेषण, नूतन मूल्यों का निर्माण एवं उनका मानव जीवन में समायोजन करने वाली कार्यप्रणाली का निर्धारण करना है। यहाँ परम्परा से प्राप्त मूल्यों से अभिप्राय मौखिक सांस्कृतिक परम्परा से है, जिससे कि बहुसंख्यक जनता स्वतः अपनी आवश्यकतानुसार सांस्कृतिक विचार ग्रहण करती है। सांस्कृतिक परम्परा का यह भाग ग्रन्थ, संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला, भवन-निर्माण कला एवं अन्य ठोस वस्तुगत आकृतियों के माध्यम से साकार रूप प्राप्त करता है। मौखिक सांस्कृतिक परम्परा ही सम्पूर्ण मानवता के बहुमत के लिए सर्वोपरि एवं एकमात्र सांस्कृतिक अजस्र स्रोत हैं जिसके माध्यम से एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को सांस्कृतिक सम्पदा विरासत के रूप में प्रदान करती है।

एक समय में अपने महान् गुण और विशेषताओं के कारण भारतीय संस्कृति विश्व की दूसरी संस्कृतियों की तुलना में सर्वश्रेष्ठ कही जाती थी। आधुनिक काल में जीवन के दूसरे क्षेत्रों में तेजी से बढ़ती हुई विसंगतियों और विद्रूपताओं ने हमारे सांस्कृतिक-जीवन को भी दूषित करके रख दिया है। आधुनिक समय में विसंगतियों का ऐसा दौर चला, जिसमें जीवन का कोई क्षेत्र विसंगतियों से अछूता नहीं रह गया। पूर्व समय में हमारे जो सांस्कृतिक और नैतिक मूल्य थे, वे आधुनिक काल, विशेषकर स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् तेजी से धराशायी होते चले गये। वे धारणाएँ एवं मान्यताएँ जो हमारे जीवन को एकता प्रेम और भाई-चारे के बन्धन में बाँधे हुए थीं, तेजी से टूटती चली गयीं। अहिंसा, प्रेम, स्नेह, दया, उदारता, सहिष्णुता, बन्धुत्व, आध्यात्मिकता, कर्मवाद के स्थान पर मानव-मानव के बीच घृणा, ईर्श्या, द्वेष, हिंसा, वैमनस्य, स्वार्थ लोलुपता आदि बढ़ते चले गये। जिसके कारण वर्तमान में हमारी संस्कृति को बहुत बड़ा खतरा पैदा हो गया है। ‘संस्कृति’ वह तत्व है जो देश के सभी नागरिकों को वर्ग, भाषा, रहन-सहन, आचार-विचार, भौगोलिक स्थितियों आदि से सम्बन्धित रहता है और विभिन्नताओं के होते हुए भी एकता के सूत्र में आबद्ध किये रहता है। वर्तमान समय में प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों और मान्यताओं के टूटने के कारण देशवासी तेजी से टूटते जा रहे हैं, तेज होती टूटने की प्रक्रिया से देश में अलगाववाद को बल मिला है। मानव-कल्याण के बीच नफरत की आग बढ़ती जा रही है और इन सबके परिणाम स्वरूप हमारी राष्ट्रीय एकता को जबर्दस्त खतरा पैदा हो गया है।

सन्दर्भ –

1. गुलाब राय , काव्य के रूप , पृ.सं . 5
2. पाण्डेय, मैनेजर, साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका , प . 13
3. सं. रामसजन पाण्डेय, उदयमानु हैंस रचनावली – 1, सरगम, पृ. सं. 389
4. कल्पना, अंक , जनवरी 1956
5. सं . परमानंद श्री वास्तव , प्रतिनिधि कविताएं , पृ . सं . 91
6. भरत भूषण अग्रवाल य एक उठा हुआ हाथ , पृ . सं . 21
7. धूमिल य संसद में सड़क तक , पृ . सं . 8
8. कुँवर नारायण , कोई दूसरा नहीं , पृ . सं . 67
9. सं . यतीन्द्र मिश्र, कुँवर नारायण: संसार भाग – 1, पृ . सं . 68